International Journal of Scientific Research in Science, Engineering and Technology
© 2018 IJSRSET | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

अभिधानचिन्तामणि के आलोक में शब्द-संकलन-पद्धति : एक विवेचन

डॉ० नवनीता
A-21, बैंकमेन्स कॉलोनी,
चित्रगुप्तनगर, कंकरबाग
पटना, बिहार, भारत

सारांश - प्रत्येक लेखक अपने प्रतिपाद्य विषय के उपस्थापन के लिए कुछ नियमों का आश्रय लेता है। तदनुसार वह अपने ग्रन्थ के अध्यायों का क्रम रखता है। उसी प्रकार हेमचन्द्र ने भी अपने कोशग्रन्थ अभिधानचिन्तामणि को प्रस्तुत करते कुछ नियम दिये हैं। उन्होंने अपने अभिधानचिन्तामणि के आरम्भ में बहुत उपयोगी पद्यात्मक भूमिका देते हुए उसकी काण्ड-व्यवस्था, शब्दों की प्रस्तुति, सजावट, लिङ्गबोध आदि पर समीचीन प्रकाश डाला है।

प्रमुख शब्द – हेमचन्द्र, अभिधानचिन्तामणि, शब्दकोश, रूढ़, यौगिक, मिश्र, शाकटायन।

हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि के मंगलपद्य में ही नाम-पदों के तीन भेद बताये हैं- रूढ़, यौगिक तथा मिश्र।[1] इसमें रूढ़ पदों पर श्लोकार्ध, यौगिक पदों पर 16 1/2 पद्य (अर्थात् 1.2 उत्तरार्ध से 1.18 तक) एवं मिश्र पदों पर एक पद्य में विचार किया गया है। स्पष्टत: यौगिक पदों पर पर्याप्त विचार-सरणि आचार्य ने प्रस्तुत की है जो कोश-रचना के सन्दर्भ में मार्गदर्शक की भूमिका धारण करती है। अभिधानचिन्तामणि की वस्तु-विन्यास-विधि प्रसंग में हेमचन्द्र स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वे उपर्युक्त तीनों प्रकार के (रूढ़, यौगिक तथा मिश्र के रूप में) पर्यायवाचक शब्दों का संग्रह वर्गानुसार करने जा रहे हैं किन्तु लिङ्ग का विधान इसमें नहीं करेंगे। आनुषंगिक रूप से यदि शब्दों का लिङ्ग स्पष्ट हो जाये तो ठीक है। यहाँ इस पत्र में रूढ़, यौगिक तथा मिश्र इन तीनों की ही विवेचना की जा रही है।

(क) रूढ़ शब्द - जिन शब्दों के सार्थक या व्याकरण-सम्मत खण्ड नहीं हो सकते उन्हें 'रूढ़' कहते हैं।[2] इनकी व्युत्पत्ति नहीं होती। भारतीय भाषाशात्र में शब्दों के रूढ़त्व पर दो पक्ष रहे हैं। यास्क, शाकटायन, पाणिनि, पतञ्जलि इत्यादि वैयाकरणों ने इस विवाद में एक या दूसरे पक्ष का समर्थन किया है।

यास्क ने निरुक्त के प्रथमाध्याय में यह विवाद पहली बार प्रस्तुत किया है - **'तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च। न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके।**[3] तदनुसार वैयाकरणों में एकमात्र शाकटायन तथा निरुक्तकारों की पूरी परम्परा सभी नामपदों को आख्यातज (धातुज अर्थात् यौगिक) मानती है। जबकि वैयाकरणों में कुछ लोग तथा गार्ग्य स्भी नामपदों को आख्यातज नहीं मानते। कुछ नामपद तो निश्चित रूप से यौगिक हैं किन्तु कुछ रूढ भी हैं।

आचार्य हेमचन्द्र इस प्रसंग में कहते हैं कि यद्यपि शाकटायन के मतानुसार रूढ़ शब्दों की भी व्युत्पत्ति मानी गयी है तथापि उनकी व्युत्पत्ति केवल वर्णानुपूर्वी का ज्ञान कराने के लिए की जाती है, उस व्युत्पत्ति से रूढ़ शब्दों की अन्वर्थता प्रकट नहीं होती।[4] जैसे – 'गो' शब्द को कोई गम्+डो (ओ) के रूप में विभक्त कर ले तो क्या प्रकृति तथा प्रत्यय के अर्थ से 'गो' शब्द का अर्थ प्रकट हो जायेगा? इससे केवल इतना ही ज्ञान हो सकेगा कि 'गो' में पहले ग् है फिर ओ है अर्थात् वर्णों का पूर्वापर-क्रम ऐसा ही है।

आखण्डल, मण्डप आदि शब्द रूढ़ हैं, व्युत्पत्ति से रहित हैं। प्रकृति और प्रत्यय का विभाग करने पर इनकी व्युत्पत्ति नहीं होती अर्थात् विभाजन से अर्थ की प्रतीति नहीं होती। इसीलिए रूढ़ शब्दों को व्युत्पत्ति-रहित कहा गया है।

(ख) यौगिक शब्द- 'योगे भवः यौगिकः' इस व्युत्पत्ति से यौगिक शब्दों का सम्बन्ध योग से है। 'योग' का अर्थ है अन्वय। शब्दों का परस्पर अर्थ का अनुगमन करना 'अन्वय' कहलाता है **(शब्दानां परस्परमर्थानुगमनमन्वयः स योगः)**। वह 'योग' या अन्वय तीन उपाधियों से उत्पन्न होता है- गुण, क्रिया तथा सम्बन्ध।[5] इन तीनों के उदाहरण हेमचन्द्र ने मूल ग्रन्थ में ही दिये हैं।

'गुण' किसी वस्तु का सिद्ध किन्तु व्यावर्तक धर्म होता है जैसे- नील, पीत, शुक्ल, स्थूल, सूक्ष्म, दीर्घ, लघु आदि। एक वस्तु की दूसरी से अथवा एक ही वस्तु-जाति के विविध व्यक्तिरूपों को गुण ही पृथक् करता है। यथा- नीलकण्ठः, शितिकण्ठः, कालकण्ठः इत्यादि। ये सभी यौगिक शब्द शिव के नाम हैं। इनमें नील, शिति आदि गुणों की प्रधानता है- **नीलः कण्ठोऽस्य इति गुणप्राधान्यान्नीलकण्ठः शंकरः।** संख्या भी गुण ही है, इसलिए संख्या बोधक शब्दों से भी यौगिक शब्द बनते हैं। जैसे- त्रिलोचनः, षण्मुखः, पञ्चबाणः इत्यादि। इन शब्दों का संकलन अभिधानचिन्तामणि में हुआ है।

'क्रिया' किसी वस्तु का साध्य धर्म होती है। व्याकरण में उपदिष्ट धातुओं से क्रिया का बोध होता है। धातु से कृत् या उणादि प्रत्यय लगते हैं तब यौगिक शब्द बनते हैं जो क्रियाजन्य यौगिक हैं। यथा- स्रष्टा (सृज्+तृच्), धाता (धा+तृच्) इत्यादि। ये दोनों ब्रह्मा के नाम हैं (अ. चि. 2.126-7)। इन शब्दों में सर्जन, धारण इत्यादि क्रियाओं की प्रधानता है (**सृजति इति सर्जनप्राधान्यात् स्रष्टा ब्रह्मा**)।[6]

'सम्बन्ध' वह उपाधि है जो सम्बन्धी पदार्थों से भिन्न, दो पदार्थों के बीच अवस्थित तथा एकात्मक होती है।[7] वैयाकरणों ने शताधिक सम्बन्ध-प्रकार माने हैं जैसे- स्वस्वामिभाव, जन्यजनक भाव, धार्यधारकभाव, भोज्भोजकभाव, पतिकलत्रभाव, सखिभाव, वाह्यवाहकभाव, आश्रयाश्रयिभाव, वध्यवधकभाव इत्यादि। इनका उपयोग यौगिक शब्दों की रचना में होता है। ये शब्द आवश्यकता तथा प्रयोग के अनुसार किसी वस्तु पदार्थ या व्यक्ति के पर्याय (नाम) बन जाते हैं। हेमचन्द्र इस विषय में कहते हैं-

स्वस्वामित्वादि-सम्बन्धस्तत्राहुर्नाम तद्वताम्। (अ. चि. मणि॰ 3 उत्तरार्ध)

(अ) सम्बन्ध के अन्तर्गत प्रथम स्थान **'स्वस्वाभिभाव'** को दिया जाता है। इसके अनुसार स्व अर्थात् आत्मीय के वाचक शब्द के बाद यदि पाल, धन, भुक्, नेता, पति तथा मतुप् के अर्थवाले शब्द लें तो ये स्वामी के बोधक बन जाते हैं। उदाहरणार्थ यदि 'भू' (पृथ्वी) शब्द को 'स्व' (धन, आत्मीय) के अर्थ में रखें तो भूपालः, भूधनः, भूभुज्

(प्रथमा एक–भूभुक्), भूनेता, भूपतिः, भूमान् – ये शब्द भू के स्वामी अर्थात् राजा के पर्याय वाचक हो जाते हैं। किन्तु कवियों के द्वारा प्रयुक्त परम्परा से ही उदाहरणों को ग्रहण करना चाहिए क्योंकि संस्कृत में शब्द–निर्माण तो असंख्य हो सकते हैं। देखना यह है कि प्रयोग में कितने शब्द आये हैं इसीलिए इस प्रसंग में हेमचन्द्र कहते हैं –

भूपालो भूधनो भूभुग् भूनेता भूपतिस्तथा।

भूमाँश्चेति कविरूढ्या ज्ञेयोदाहरणावली।।[8]

कवियों की प्रयोग–परम्परा ही शब्द–संग्रह में नियामक तत्त्व है, अन्यथा शब्दों की रचना तो कृत् तथा तद्धित प्रत्ययों के कारण एवं समास के आधार पर करोड़ों की संख्या में हो सकती है। इसीलिए वैयाकरणों ने भी 'अनभिधानात्' के द्वारा अनेक शब्द–निर्माणों पर रोक लगायी है।[9] किसी शब्द का शब्दत्व उसकी प्रयुज्यमानता तथा अर्थबोधकता में ही निहित है– यह सर्वतत्राभिमत सिद्धान्त है। इसीलिए आचार्य हेमचन्द्र कविरूढ़ि को निर्दिष्ट करते हैं।

(आ) सम्बन्ध की कोटि में **'जन्यजनकभाव'** द्वितीय स्थान पर है। इस सम्बन्ध के कारण भी अनेक यौगिक शब्दों की व्यवस्था की जाती है। जन्य का अर्थ है कार्य और जनक कारण का बोधक है। इस कार्य के बोधक शब्द से परे कृत्, कर्ता, सृट् (सृज् + क्विप्), स्रष्टा, विधाता, कर (कृ+अच्), सू (सू + क्विप्) इत्यादि शब्द लगाये जायें तो जनक या उसके उत्पादक के पर्याय बन जाते हैं जैसे – विश्वकृत् (विश्व–रूप कार्य को करने वाला ईश्वर या विश्वकर्मा नामक देवता, (अ. चि. मणि 96), विश्वकर्त्ता, विश्वस्रष्टा, विश्वविधाता, विश्वकरः, विश्वसू इत्यादि। यद्यपि इन सभी शब्दों का उपयोग इस कोश में नहीं हुआ है तथापि कोषकार ने यौगिक शब्दों की रचना– प्रक्रिया का रहस्य बताते हुए संस्कृत–कवियों के समक्ष शब्द–सम्पत्ति के द्वार मुक्त किये हैं।[10]

जिस प्रकार जन्य वाचक शब्दों से जनक–वाचक शब्दों की रचना होती है उसी प्रकार जनक वाचक शब्दों के बाद योनि, ज (जन्+ड), रुह, जन्मा, भू, सूति शब्द लगाने पर एवम् अण्, ण्य, फक् आदि प्रत्ययों के योग से जन्य (कार्य) के पर्यायवाचक शब्दों का निष्पादन होता है। यथा– आत्मयोनिः, आत्मजः (पुत्र), आत्मरुहः, आत्मजन्मा, आत्मभू (ब्रह्मा, अ.चि. मणि 127), आत्मसूतिः – ये प्रायः ब्रह्मा के पर्याय (नाम) हैं। अण् आदि अपत्यार्थक प्रत्यय भी ऐसे कार्यवाचक यौगिक शब्दों का निर्माण करते हैं जैसे – भृगु+अण् त्र् भार्गवः (भृगुंशी, परशुराम), औपगवः (उपगु+ अण्), दैत्यः (दिति + ण्य), बार्हस्पत्यः, आदित्यः, वात्स्यायनः (वत्स + ण्य + फक्) इत्यादि। यहाँ भी हेमचन्द्र टिप्पणी देते हैं कि कविरूढि को ध्यान में अवश्य रखे क्योंकि आत्मयोनिः के सादृश्य से आत्मकारकः, आत्मजनक ऐसे प्रयोग नहीं देखे जाते।[11]

(इ) सम्बन्ध की तीसरी कोटि **'धार्यधारकभाव'** की है। 'धार्य' धारण करने योग्य पदार्थ होता है। इसके वाचक वृष आदि शब्दों से यदि ध्वज अत्र, पाणि, अङ्क, मौलि, भूषण, भृत् तथा इनके समान शब्द लगें, अथवा शाली या शेखर का प्रयोग हो, मत्वर्थक प्रत्यय लगे अथवा माली, भर्ता, धर – ये शब्द लगें तो धारक (धारण करने वाले) शिव आदि का पर्याय बन जाता है–

धार्याद् ध्वजात्रपाण्यङ्क-मौलिभूषणभृन्निभाः।

शालि-शेखर - मत्वर्थ-मालि-भर्तृ-धरा, अपि।। –अ.चि. मणि 6–7

इनके उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं- वृषध्वजः (जिसके ध्वज में वृष का चिह्न है), शूलात्रः (त्रिशूल को अत्र-रूप में धारण करने वाला), पिनाकपाणिः, (जिसके हाथ में पिनाक नामक धनुष है), वृषाङ्कः, चन्द्रमौलिः, शशिभूषणः, शूलभृत् (शूलधारी)। इसी प्रकार पिनाकभर्ता, पिनाकशाली, चन्द्रशेखरः, शूली (मत्वर्थक इन् प्रत्यय), पिनाकधरः, पिनाकमाली इत्यादि सभी शब्द शिव के पर्याय हैं। 'निभ' (समान) शब्द का तात्पर्य है कि वृषकेतनः, शूलायुधः, वृषलक्ष्मा, चन्द्रशिराः, चन्द्राभरणः इत्यादि शब्द भी बनें।

कविरूढ़ि का ध्यान रखना यहाँ भी आवश्यक है अन्यथा वृषध्वजः के समान शूलध्वजः ऐसा अनिष्ट प्रयोग होने लगेगा। चन्द्रात्रः, अहिपाणिः, चन्द्राङ्कः, गङ्गामौलिः, शूलभूषणः चन्द्रशाली, गङ्गाशेखरः, शूलवान्, सर्पमाली, चन्द्रभर्ता, चन्द्रधरः इत्यादि शब्द कविरूढ़ि से स्वीकृत नहीं हैं इसलिए हेमचन्द्र कहते हैं-

कविरूढ्या इत्येव। तेन सत्यपि धार्यधारकसम्बन्धे न सर्वेभ्यो धार्येभ्यो ध्वजाद्यर्था शब्दाः प्रयोज्याः। नहि भवति वृषध्वजवत् शूलध्वजः।[12]

तात्पर्य यह है कि हेमचन्द्र अपने नियमों की व्यापकता की प्रतिज्ञा करते हुए भी उनकी सीमा से परिचित हैं। तभी तो कवि प्रयोग की वे बार-बार दुहाई देते हैं। व्याकरण शास्त्र में शब्द-साधुत्व का मानदण्ड शिष्ट-प्रयोग है वहीं हेमचन्द्र के लिए कविरूढ़ि है।

(ई) सम्बन्ध की अन्य कोटि है - **भोज्यभोजकभाव।** इससे भी यौगिक शब्द निष्पन्न होते हैं। भोज्य (खाने योग्य) वस्तु के वाचक शब्द के बाद यदि भुज् (प्रथमा एक॰ में भुक्), अन्धस्, व्रत, लिह् (प्रथमा एक. में लिट् त्र् चाटने वाला), पायी (पीने वाला), प (पा + क), आश (खाने वाला, अश् + अण्), अशन आदि शब्द लगे तो भोज्य वस्तु को खानेवाले (भोजक) व्यक्ति का बोध कराते हैं। इनके क्रमशः उदाहरण हैं- अमृतभुजः (देवाः), अमृतान्धसः, अमृताशाः, अमृताशनाः। ये सभी देववाचक शब्द हैं क्योंकि अमृत देवों का भोज्य पदार्थ माना गया है। भुज् आदि शब्दों के सदृश दूसरे शब्दों का भी प्रयोग हो सकता है जैसे अमृतभोजनाः। अग्नि का पर्याय है- हुतभुक् हुताशनः इत्यादि, क्योंकि आहुति के रूप में दिये गये पदार्थ को अग्नि खा जाते हैं, आत्मसात् कर लेते हैं।

यहाँ भी कविरूढ़ि से प्रसिद्ध शब्दों का ही ग्रहण वाञ्छनीय है। 'वल्भन' आहारवाचक शब्द है (अ.चि. मणि 87), इसके आधार पर देवों को अमृतवल्भाः नहीं कह सकते क्योंकि कवियों में प्रचलित नहीं है।

(उ) पतिकलत्रभाव भी सम्बन्ध का एक प्रकार है। पतिवाचक शब्द से कुछ शब्दों को जोड़ने पर पत्नी का तथा कलत्रवाचक शब्द से कुछ शब्दों का योग होने पर पति का पर्याय बन जाता है- ये यौगिक शब्द होते हैं, पतिवाचक शब्दों से यदि कान्ता, प्रियतमा, वधू, प्रणयिनी अथवा ऐसे ही समानार्थक शब्द (रमणी, वल्लभा, प्रिया इत्यादि) संयुक्त किये जायें तो भार्याओं का पर्याय (नाम) बन जाता है।[13] जैसे पार्वती के नाम होते हैं - शिवकान्ता, शिवप्रियतमा, शिववधू, शिवप्रणयिनी, शिवरमणी, शिववल्लभा, शिवप्रिया इत्यादि। लक्ष्मी के नाम भी ऐसे ही विष्णुकान्ता, हरिप्रिया, हरिवल्लभा इत्यादि के रूप में होते हैं। हेमचन्द्र सावधान करते हैं कि शिवकान्ता के सादृश्य से 'शिवपरिग्रहः' को पार्वती का नाम नहीं कहा जाता यद्यपि 'परिग्रह' शब्द जाया, पत्नी या वधू का पर्याय है (अ.चि. मणि 177)।

कलत्र-वाचक शब्द से वर, रमण, प्रणयी, ईश, प्रिय तथा ऐसे ही अन्य शब्द (पति, भर्ता, वल्लभ आदि) संयुक्त हों तो वे उन स्त्रियों के पति के वाचक होते हैं जिनसे पति का साहचर्य प्रसिद्ध है (**तद्वतां कलत्रवतां**

वरयितृणां नाम आहुः)। जैसे शिव के पर्याय हैं- गौरीवरः पार्वतीरमणः, गौरीप्रणयी, उमेशः, पार्वतीप्रियः, गौरीवल्लभः, उमापतिः इत्यादि। कविरूढ़ि का प्राबल्य होने से गौरीवरः के समान 'गङ्गावरः' जैसे शब्द शिव के पर्याय नहीं होते, इनकी प्रसिद्धि नहीं है।

(ऊ) सम्बन्ध के भेदों में **सखि-भाव** (या मैत्रीभाव) भी है। मित्र के बोधक शब्द के अनन्तर सखि आदि (मित्रबोधक -सुहृद्, सहाय, मित्र, बन्धु, बान्धव आदि) शब्द जोडें तो उसके मित्र के पर्याय बन जाते हैं। जैसे - श्रीकण्ठसखः (शिव का मित्र कुबेर), मधुसखः (वसन्त का मित्र कामदेव), वायुसखः (वायु का मित्र अग्नि), अग्निसखः (वायु)। रूढ़ि है कि वे परस्पर मित्र हैं। इसी प्रकार कामसुहृद्, काममित्रम्, मदनसखः आदि शब्द भी वसन्त के पर्याय हैं। इस प्रसंग में भी कविरूढ़ि की महत्ता देखी जाती है। यद्यपि मित्र परस्पर होते हैं तथापि 'श्रीकण्ठसखः कुबेरः' यह प्रयोग तो प्रसिद्ध है किन्तु 'धनदसखः श्रीकण्ठः' यह कविरूढ़ि में प्रसिद्ध नहीं है। अतएव ऐसे प्रयोग उचित नहीं हैं।

(ऋ) सम्बन्ध का एक अन्य प्रकार है - **वाह्यवाहक-भाव** अर्थात् वाहन और उस पर आरोहण करनेवाले का सम्बन्ध। इससे भी यौगिक शब्दों की रचना होती है। वाहन के वाचक शब्द के अनन्तर गामी, यान, आसन आदि अथवा इनके पर्याय वाहन, रथ आदि शब्द रहें तो जिसका वाहन है उसके नाम के रूप में यौगिक शब्द होते हैं। जैसे शिव का वाहन वृष कहा गया है अतः वृषगामी, वृषयानः, वृषासनः, वृषवाहनः, वृषरथः इत्यादि शब्द शिव के नाम हैं। गरुड़ विष्णु का वाहन है अतः गरुडासनः, गरुड़वाहन आदि शब्द विष्णुवाचक हैं। यहाँ भी कविरूढ़ि को ध्यान में रखना चाहिए। कुबेर को नरवाहनः तो कहा जाता है किन्तु नरगामी या नरयानः जैसे शब्द कुबेर के वाचक नहीं होते।

(ऌ) हेमचन्द्र ने सम्बन्ध के प्रसंग में '**ज्ञातेय सम्बन्ध**' का उल्लेख किया है। ज्ञाति का अर्थ है स्वजन जैसे - भातृ, स्वसृ, पुत्री, पुत्र आदि। जिसका जिसके साथ ज्ञातेय सम्बन्ध परम्परा से सिद्ध है उस व्यक्ति के वाचक शब्द के बाद स्वसा, दुहिता, आत्मज, अग्रज, अवरज, तनय, सूनु आदि शब्द लगाकर स्वजन के वाचक बनाये जाते हैं। जैसे- यमस्वसा (यम की बहन अर्थात् यमुना), पर्वतपुत्री (पार्वती), चन्द्रात्मजः (चन्द्र के पुत्र अर्थात् बुध), गदाग्रज (गदा के बड़े भाई अर्थात् विष्णु), इन्द्रावरजः (इन्द्र के छोटे भाई अर्थात् विष्णु) दशरथतनयः, कौसल्यासून् ये राम के वाचक हैं।

सोदर, सहोदर, अनुज आदि सम्बन्धवाचक शब्दों का भी यहाँ संकलन होता है। अतः कालिन्दीसोदरः (यमुना के सहोदर भाई यम), रामानुजः (लक्ष्मण) जैसे शब्द निष्पन्न होते हैं। कविरूढ़ि में यमुना को यमस्वसा तो कहा जाता है किन्तु आख्यानों में शनि की बहन माने जाने पर भी उसे 'शनिस्वसा' नहीं कहते। अतः ऐसा प्रयोग अनुचित है।

(ए) आश्रयाश्रयि-भाव - भी एक महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध माना जाता है। आश्रय का अर्थ है निवास का स्थान। आश्रय के वाचक शब्द से परे सद्म आदि (अर्थात् इसके पर्याय शय, वासी, सद आदि) शब्द रहें तो उस आश्रयस्थल के निवासी (आश्रय लेनेवाले) का पर्याय बन जाते हैं।[14] जैसे द्यु या दिव् (स्वर्ग) के निवासी देवों के पर्याय इस प्रक्रिया से बनते हैं - द्युसद्मानः, द्युसदनाः, दिवौकसः, द्युवसतयः दिवाश्रयाः द्युशयाः, द्युवासिनः, द्युसदः इत्यादि। 'दिन' शब्द को वकारान्त तथा उकारान्त दोनों माना गया है। इसीलिए कुछ नामों में अकारान्त भी है।[15] इस नियम का मनमाना प्रयोग नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार स्वर्ग देवों का आश्रय है, उसी प्रकार भूमि (पृथ्वी) मनुष्यों का आश्रय स्थल है। फिर भी मनुष्य के पर्याय-रूप में भूमिसद्मानः या भूसदनाः जैसे प्रयोग नहीं होते कवियों के बीच ऐसी परम्परा नहीं चली है।

(ऐ) वध्य-वधकभाव के कारण भी यौगिक शब्दों की रचना होती है। वध्य का अर्थ है मारने योग्य (घात्य)। इस वध्यवाचक शब्द के परे भिद्, द्वेषी, जित्, घाती (हन् + णिनि), ध्रुक् (द्रुह् + क्विप्), अरि, ध्वंसी, शासन, अन्तकारी, दमन, दर्पच्छिद्, मथन, दारी, निहन्ता, केतु, हा (हन् + क्विप्), सूदन, अन्तक, जयी इत्यादि शब्द लगें तो उन वध्य पदार्थों के विनाशक के पर्याय बन जाते हैं। इस सम्बन्ध के प्रसंग में शब्दों की लम्बी सूची दी गयी हैं। शिव के पर्यायवाची शब्दों के उदाहरण दिये गये हैं। शिव ने तीन पुरों का संहार किया था अतः उनके नाम हैं - पुरभिद्, पुरद्वेषी, पुरजित्, पुरघाती, पुरदमनः, पुरदर्पच्छिद्, पुरमथनः, पुरहारी, पुरनिहन्ता, पुरकेतु, पुरहा, पुरसूदनः, पुरान्तकः, पुरजयी, पुरहरः इत्यादि।

'वध्य' शब्द का केवल 'मारा गया' या 'नष्ट किया' अर्थ नहीं है; अपितु 'वध के योग्य' भी है किन्तु जिसे मारा नहीं गया हो।[16] इसीलिए विष्णु (कृष्ण) के नामों में कालियदमनः, कालियारिः, कालियशासनः इत्यादि भी होते हैं, भले ही कालिय का वध नहीं किया गया था; फिर भी वध के योग्य तो वह था ही। उसे दण्डित करके छोड़ दिया गया था। फिर भी 'कालियघाती' का प्रयोग नहीं होता। कवियों के बीच ऐसे शब्दों की प्रसिद्धि नहीं है।

सम्बन्ध का विवक्षाधीन होना

यौगिक शब्दों की रचना के प्रसंग में जो स्वस्वाभिभाव-आदि सम्बन्ध ऊपर दिखाये गये हैं, वे सब विवक्षा (प्रयोग करने की इच्छा) के अधीन रहते हैं। इसलिए कभी-कभी एक ही सम्बन्धिवाचक पद (जैसे- वृष) से अनेक प्रकार के सम्बन्धों की विवक्षा के कारण नये-नये दूसरे यौगिक शब्द भी बनते हैं; केवल उसकी प्रसिद्धि या प्रचलन का ध्यान रखना पड़ता है। [17]

उदाहरण के लिए 'वृषवाहनः' शब्द-वाह्य-वाहकभाव की विवक्षा को प्रकट करता है तो स्वस्वाभिभाव की विवक्षा में 'वृषपतिः' शब्द भी होता है पुनः यदि हम धार्य-धारकभाव की विवक्षा करें तो 'वृषलाञ्छनः' (वृष के चिह्न को आपकी पताका में धारण करने वाले शिव) भी होता है। ये सभी शिव के पर्याय हैं जो एक ही शब्द 'वृष' से विभिन्न सम्बन्धों के प्रकाशन के निमित्त पृथक्-पृथक् उत्तरपदों के योग से निष्पन्न हुए हैं। ये सभी लोक-प्रचलित शब्द हैं जैसा कि हेमचन्द्र ने मूल कोश में ही कहा है-

दृश्यते खलु वाह्यत्वे वृषस्य वृषवाहनः।

स्वत्वे पुनर्वृषपतिर्धार्यत्वे वृषलाञ्छनः॥[18]

तात्पर्य यह है कि वृष को कहीं वाह्य, कहीं स्वत्व और कहीं धार्य के रूप में रख कर ये प्रयोग हुए हैं। सम्बन्ध-विवक्षा के अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं जिनमें एक ही शब्द से अनेक यौगिक शब्द बनते हैं। 'अंशु' (किरण) को यदि धार्य माना जाय तो इसके धारक के अर्थ में 'अंशुमाली' (सूर्य) ऐसा शब्द बनेगा; दूसरी ओर इसे स्व के रूप में (स्वत्वे) स्वीकार करें तो 'अंशुपतिः' तथा 'अंशुमान्' (**अंशु+मतुप्, अंशवः अस्य सन्तीति**) शब्द बनेंगे। सभी सूर्य के ही नाम हैं। तात्पर्य यह है कि सभी शब्दों का प्रवृत्तिनिमित्त (व्यवहार) तो समान है किन्तु व्युत्पत्तिनिमित्त पृथक्-पृथक् हैं। इसी प्रकार 'अहि' (सर्प) को वध्य मानकर वधक (वध करने वाले मयूर) के अर्थ में यौगिक शब्द 'अहिरिपु' बनता है तो इसे भोज्य मानकर भोजक के अर्थ में 'अहिभुक्' (अहि+भुज्+क्विप्) शब्द होता है, यह भी 'मयूर' का ही नाम है।[19]

यौगिक शब्दों की रचना के अन्य प्रकार

हेमचन्द्र ने यौगिक शब्दों की रचना के सम्बन्ध में कई अन्य महत्त्वपूर्ण बातें कहीं हैं जिनका विवेचन यहाँ प्रासंगिक है। जातिवाचक शब्द का व्यक्तिवाचक के रूप में प्रयोग, संख्यावाचक शब्द का प्रतीकात्मक प्रयोग, विरोधी अर्थ को प्रकट करने की पद्धति, पर्यायवाचक शब्दों का परिवर्तन – ये कुछ सामान्य निरीक्षण हैं जो आचार्य हेमचन्द्र की प्रतिभा, सूक्ष्म निरीक्षण–शक्ति तथा व्यापक दृष्टि के परिचायक हैं। इनका सोदाहरण निरूपण किया जाता है–

(अ) जातिवाचक का व्यक्तिवाचक प्रयोग – व्यक्त चिह्नों (सन्देहरहित विशेषणों) के द्वारा जाति का बोधक शब्द भी व्यक्तिबोधक बन जाता है जैसे – अगस्त्य मुनि के द्वारा पवित्र की गयी दिशा (अगस्त्यपूता) दक्षिण दिशा के रूप में प्रसिद्ध है। यह चिह्न संदेहरहित है कि अगस्त्य ऋषि ने दक्षिण दिशा को अपना स्थायी निवास बना लिया था। अत: जातिवाचक 'दिक्' शब्द 'अगस्त्यपूता' इस व्यक्त विशेषण से व्यक्ति–रूप दक्षिणा दिक् का वाचक हो गया। सप्तर्षि नामक तारका समूह से सेवित उत्तर दिशा को इसी प्रकार 'सप्तर्षिपूता दिक्' कहा जाता है। कुबेर को उत्तरदिशा का दिक्पाल कहा जाता है, अत: 'कौबेरी दिक्' भी उत्तर का वाचक है।[20] इसी प्रकार चन्द्र (व्यक्तिवाचक) के अर्थ में 'अत्रि के नेत्र से उत्पन्न ज्योति, ऐसा सविशेषण जाति–शब्द प्रयुक्त होता है।[21]

(आ) संख्यावाचक का प्रतीकात्मक प्रयोग – तीन, पाँच, सात आदि अयुग्म संख्या के प्रतीक के रूप में यौगिक शब्दों के पूर्वपद में अयुक् या विषम – इन शब्दों का प्रयोग करके उन–उन संख्याओं का बोध किया जाता है जैसे – त्रिनेत्र: (शिव) के पर्याय के रूप में अयुगलोचन:[22] विषमनेत्र:, अयुङ्नेत्र: इत्यादि शब्द प्रचलित हैं। कामदेव के पाँच बाण हैं अत: उन्हें पञ्चबाण:, पञ्चेषु आदि कहते हैं। उक्त पद्धति से उन्हें अयुगिषु (अयुक्+इषु), विषमेषु, विषमबाण: आदि भी कहते हैं। सप्तपर्ण (वृक्षविशेष, छितवन) को अयुक्पलाश:, विषमपलाश:, विषमपर्ण आदि इसी प्रकार कहा जाता है। शिव को नवशक्ति:, अयुगशक्ति: विषमशक्ति: आदि कहते हैं। अन्यान्य पर्यायों का इसी प्रकार प्रयोग कर सकते हैं।

(इ) विरोधी अर्थ की अभिव्यक्ति – किसी गुणवाचक शब्द के पूर्व में नञ् (व्यंजन के पूर्व 'अ', स्वरवर्ण के पूर्व 'अन्') लगाने से अथवा बाद में 'इतर' लगा देने से विरोधी का अर्थ आ जाता है। जैसे – सित: का विरोधी असित:, सितेतर: (काले रंग का)। कृश: (दुर्बल, क्षीणकाय) का विपरीतार्थक शब्द है – अकृश:, कृशेतर: (मोटा)। कालिदास का प्रयोग है – वामेतरस्तस्य कर: प्रहर्त्तु: (रघुंश 31)। वाम से भिन्न अर्थात् दाहिना हाथ। इस प्रकार विरोधी अर्थवाले यौगिक शब्द बनते हैं।

(ई) पर्यायवाचक शब्दों का परिवर्तन -

वार्ध्यादिषु पदे पूर्वे वाडवाम्न्यादिषूत्तरे।

द्वयेऽपि भूभृदाद्येषु पर्यायपरिवर्तनम्॥ 23

पर्यायवाचक शब्दों का परिवर्तन कतिपय यौगिक शब्दों में किया जाये तो उससे अन्य पर्यायों या नामों की रचना हो सकती है। इस विषय का सामान्य संकेत ऊपर कई सम्बन्धों के प्रसंग में किया गया है, तथापि यहाँ नियमबद्ध करने के लिए विशेष विवरण दिया जाता है। वार्धि (वार्+धि) आदि शब्दों में पूर्वपद का परिवर्तन अन्य पर्यायों के द्वारा करें तो अपेक्षित अर्थ (समुद्र) की प्राप्ति होगी, समुद्र के अनेक पर्याय निकल सकेंगे। वारि का अर्थ है जल। इसे यों बदलें –

वारिधि, जलधि, अब्धि, पयोधि, तोयधि इत्यादि। इसी प्रकार 'वारिद' शब्द के पूर्वपद का परिवर्तन करें तो जलद, अब्द, तोयद, पयोद इत्यादि मेघ के पर्याय होंगे। वस्तुतः द, मुक्, धर, भृत् –इन शब्दों के पूर्व जलवाचक शब्द रहने पर मेघ का अर्थ हो जाता है। जैसे– जलदः, जलमुक्, जलधरः, जलभृत्। तोयधरः, तोयभृत्, वारिधरः, वारिभृत्, पयोभृत्, नीरधरः, नीरभुक्, पयामुक् इत्यादि।

वाडवाग्नि (या वडवाग्नि) आदि यौगिक पदों के उत्तरपद का परिवर्तन करें तो इस मूल शब्द के पर्यायवाची शब्द बनते हैं। जैसे – वाडवाग्निः, वडवानलः, वडवावह्निः इत्यादि। इसी प्रकार सरोजम् (कमल) जैसे शब्दों में उत्तरपद का परिवर्तन करने से सरोरुहम् इत्यादि भी कमलवाचक होते हैं।

भूभृत् (राजा) इत्यादि पदों में पूर्व और उत्तर दोनों पदों का परिवर्तन पर्यायों के द्वारा करके राजा के पर्यायवाचक शब्द निष्पन्न किये जाते हैं। जैसे – उर्वीभृत् (पृथ्वी को धारण करनेवाला राजा), भूधरः, उर्वीधरः, पृथ्वीधरः, मेदिनीधरः। इस नियम को प्रायिक ही समझना चाहिए क्योंकि लोक में प्रयोग की निरन्तरता कभी–कभी किसी शब्द को दो अर्थों में स्थापित करके क्रमशः मूल अर्थ को क्षीण कर देती है। 'भूधर' शब्द राजा का वाचक होते हुए पर्वत के अर्थ में प्रायिक हो गया। 'पयोधरः' शब्द भी इसी प्रकार 'स्तन' के अर्थ में प्रायिक हो गया, मेघ अर्थ गौण हो गया। अर्थों की यह प्रवृत्ति 'विशेषीकरण' कही जाती है।

उपर्युक्त पद्धति से सुरपतिः के दोनों पदों में परिवर्तन करके देवराजः अमरेशः, देवेन्द्र इत्यादि शब्द भी बनते हैं – ये सभी इन्द्र के पर्याय हैं।

इस प्रकार हेमचन्द्र ने यौगिक शब्दों का समापन करते हुए कहा है कि ये परिवर्तन–शील शब्द हैं।[24] प्रकृति–प्रत्यय के योग से अथवा दो पदों के योग से इनकी रचना की जाती है। यौगिक शब्दों का भाण्डागार इतना व्यापक है कि इनकी गणना असंभव है। समासों के प्रयोग से एवं कृत्, उणादि और तद्धित प्रत्ययों के उपयोग से यौगिक शब्द–भण्डार संस्कृत भाषा की व्यापकता को प्रदर्शित करने के वास्तविक आधार हैं।

(ग) मिश्र (योगरूढ) शब्द– यौगिक शब्द परावृत्ति (परिवर्तन) को सह लेते हैं अर्थात् परिवर्तित किये जाने पर भी अभीष्ट अर्थ को नहीं छोड़ते, किन्तु मिश्र शब्द परिवर्तन को नहीं सह पाते। यदि उनका परिवर्तन किया जाता है तब अभीष्टार्थ बदल जाता है। इसीलिए इनका लक्षण हेमचन्द्र इस प्रकार देते हैं –

मिश्राः पुनः परावृत्त्यसहा गीर्वाण-सन्निभाः।[25]

अर्थात् गीर्वाण आदि शब्दों के समान ये मिश्र शब्द होते हैं जो यौगिक शब्दों की प्रकृति के विपरीत शब्द में परिवर्तन को नहीं सह पाते। न इनका परिवर्तन पूर्वपद में हो सकता है न उत्तरपद में। [26] यदि इन्हें किसी स्थान पर पर्याय शब्दों के द्वारा बदल दिया जाये तो न केवल अभीष्ट अर्थ की प्रतीति का अभाव होगा अपितु ये रूढिच्युत भी हो जायेंगे अर्थात् प्रयोग का प्रामाणिक आधार इन्हें प्राप्त नहीं हो सकेगा, किसी उच्छृंखल व्यक्ति की निरंकुश स्वच्छन्दता से ही ऐसा सम्भव होगा। न शब्दों के 'मिश्र' कहे जाने का कारण यह है कि ये आकार की दृष्टि से योग युक्त हैं, इन्हें प्रकृति–प्रत्यय या समासादि–विग्रह के रूप में देखा जा सकता है; किन्तु अर्थ की दृष्टि से रूढिमान हैं (योगयुक्ता रूढिमन्तश्च)। 'गीर्वाण' (अ. चि. मणि 3) आदि ऐसे ही शब्द हैं। 'गीर्वाण' देव का पर्यायवाची शब्द है। कहने के लिए आकार की दृष्टि से इसमें दो खण्ड हैं – गीर् (गिर + वाणी) तथा वाण (बाँसुरी) किन्तु इन खण्ड रूप शब्दों का पूरे पद के अर्थ में कोई अन्वय सम्भव नहीं होने से इसे 'रूढ़' ही कहा गया है।[27] इस प्रकार ऐसे शब्दों को संस्कृत

अर्थविज्ञान में 'योगरूढ़' कहने की प्रथा है। यहाँ 'रूढ़' प्रधान शब्द है, तत्पुरुष समास में उत्तरपदार्थ की ही प्रधानता होती है; 'योग' शब्द उपसर्जन अर्थात गौण है।

हेमचन्द्र अपनी कोशविवृति में स्पष्ट करते हैं कि अमिधानचिन्तामणि में ऐसे योगरूढ़ शब्दों का ही प्रधानतया संग्रह है, तथाकथित यौगिक शब्दों को तो उपर्युक्त नियमों के अन्तर्गत स्वयं समझा जा सकता है। दूसरी बात यह है कि यौगिक शब्दों की संख्या इतनी अधिक हो जाएगी कि किसी भी कोशकार के लिए उनका संकलन सर्वथा असम्भव है।

इस प्रकार सर्वत्र शब्द-संकलन में तार्किकता तथा उपयोगिता पर ध्यान रखा गया है। कविरूढि तथा लोकग्राह्यता को हेमचन्द्र छोड़ नहीं पाते। अभिधानचिन्तामणि में तीनों प्रकार के शब्द संकलित हैं - रूढ, यौगिक तथा मिश्र। किन्तु यौगिक शब्दों की गणना एक प्रकार से असम्भव होने से केवल प्रसिद्ध यौगिकों को ही इसमें स्थान दिया गया है। फिर भी विवृति में अनेक यौगिकों के समावेश का सुझाव हेमचन्द्र ने दिया है। यही नहीं, इस कोश के परिशिष्ट में भी उन्होंने कुछ शब्दों को जोड़ा है। इस प्रकार हेमचन्द्र के कोश के इन तीनों रूपों को देखने पर ही अभिधान कोश का पर्याय-संग्रह होता है।

सन्दर्भ सूचि

1. अभिधानचिन्तामणि 1.1 (उत्त.) रूढयौगिकमिश्राणां नाम्नां मालां तनोम्यहम्।
2. उपरिवत् 1.2 (पू.) व्युत्पत्तिरहिता: शब्दा रूढा आखण्डलादय:।
3. निरुक्त 12
4. अभिधानसंग्रह में अ. चि. मणि 2 पर टिप्पणी - तथापि वर्णानुपूर्वीज्ञानमात्रप्रयोजना तेषां व्युत्पत्ति:, न पुनरन्वर्थार्थप्रवृत्तौ कारणमिति रूढा अव्युत्पन्ना एव।
5. अभिधानचिन्तामणि 1.2 (उ.) योगोऽन्वय: स तु गुण-क्रिया-सम्बन्धसंभव:।
6. अभिधानचिन्तामणि -विवृति 3, पृ. 1
7. नागेश - परमलघुमञ्जूषा, पृ. 37 सम्बन्धो हि सम्बन्धिभ्यां भिन्नो द्विष्ठ एकबुद्धि नियामकश्च।
8. अ. चि. मणि 4-5
9. काशिका मणि 2.1 कर्मण्यण् - ग्रामं गच्छति, आदित्यं पश्यति, हिमवन्तं शृंणातीत्यत्र न भवत्यनभिधानात्। कर्म उपपद में रहने पर भी धातु से अण्-प्रत्यय नहीं हुआ।
10. इस कोटि के अन्य शब्द हैं - विश्वकारक:, विश्वजनक: इत्यादि जो ब्रह्मा के पर्याय हैं। कविरूढ़ि की प्रबलता के कारण चित्रकृत्, चित्रकार: आदि प्रयुक्त होते हैं किन्तु चित्र नहीं होता।
11. अभिधानचिन्तामणि - विवृति 6, पृ. 2
12. अभिधानचिन्तामणि प्ण् 6-7, पृ. 2
13. अभिधानचिन्तामणि प्ण् 8 (पू.) की विवृति - पतिर्वरयिता, तद्वाचकाच्छब्दात्कान्तासदृशा: शब्दा:। तद्व तीनां पतिमतीनां भार्याणां नाम आहु। निभग्रहणात् रमणी-वल्लभा -प्रिया-प्रभृतयो गृह्यन्ते।

14. अ. चि. मणि 10 (पू.) की विवृति - आश्रयो निवासः। तद्वाचिनः शब्दात्परे सद्मपर्यायाः शय-वासि- सदादयश्च तद्वताम् आश्रयवताम् आश्रितानां नाम आहु।
15. उपरिवत्, पृ. 3 दिवशब्दो वृत्तावकारान्तोऽप्यस्तीति।
16. अ. चि. मणि 10 (उत्तर) की विवृति - वध्य इति वधार्हमात्रेऽपि।
17. अभिधानचिन्तामणि मणि 11-12 विवक्षितो हि सम्बन्ध एकतोऽपि पदात्ततः। प्राक्प्रदर्शित-सम्बन्धि-शब्द-योज्या यथोचितम्।।
18. उपरिवत् 12 (उ.) - 13 (पू.)।
19. अभिधानचिन्तामणि 14 (पू.) वध्यत्वेऽहेरहिरिपुर्भोज्यत्वे चाहिभुक् शिखी।
20. माघ ने शिशुपालवध (मणि1) में प्रयोग किया है-कौबेरदिग्भागमपास्य मार्गमागस्त्यमुष्णांशुरिवावतीर्ण।
21. अ.चि. मणि 14-15; तुलनीय -रघुवंशम् 75 अथनयनसमृत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौ।
22. अयुक् के स्थान पर अयुग भी होता है।
23. अ. चि. प्. 17-18 (पू.)
24. अभिधानचिन्तामणि 18 (उत्त.) एवं परावृत्तिसहा योगात्स्युरिति यौगिकाः।
25. अ. चि. मणि 19 (पू.)।
26. उपरिवत् 19 की विवृति - गीर्वाणादयः शब्दाः पूर्वत्र उत्तरत्र च पदे पर्यायपरावृत्तिमसहमाना मिश्रा योगयुक्ता रूढिमन्तश्च अत्राभिधानचिन्तामणौ नाममालायां प्रवक्ष्यन्ते।
27. दशरथ, कृतान्त, मण्डप इत्यादि ऐसे ही शब्द हैं। अ.चि. मणि 19 की विवृति।